नियमसार गाथा ४९।

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्ध-सहावा सुद्ध-णया संसिदी जीवा।।४९।।

कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान हैं'' ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए ''व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है'' ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है, ''उनका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है'' ऐसी विवक्षा से नहीं। व्यवहारनय के विषयों का आश्रय (आलम्बन, झुकाव, सन्मुखता, भावना) तो छोड़नेयोग्य है ही ऐसा समझने के लिए ५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा।

जिस जीव के अभिप्राय में शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण और पर्यायों के आश्रय का त्याग हो, उसी जीव को द्रव्य तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है ऐसा समझना, अन्य को नहीं।

व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये।
है शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से॥४९॥

टीका: —यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन (कथन) है। दोनों नय का कथन। उपादेय अर्थात् एक है, इतना कहने के लिए उपादेय कहा। नीचे अर्थ है। नीचे अर्थ किया है। ***प्रमाणभूत ज्ञान में...*** किसी भी द्रव्य का प्रमाण (ज्ञान अर्थात्) द्रव्य और पर्याय दो का इकट्ठा ज्ञान जब हो, तब ***शुद्धात्मद्रव्य का तथा उसकी पर्यायों का—दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए।*** प्रमाणज्ञान में द्रव्य और पर्याय दोनों साथ होते हैं। निश्चयनय में सामान्य होता है, व्यवहारनय में पर्याय होती है। प्रमाणज्ञान में सामान्य और विशेष दोनों इकट्ठे होते हैं। यह कहते हैं। ***उसकी पर्यायों का—दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए।***

''स्वयं को कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान हैं''... आत्मा में विकारी पर्याय है, विद्यमान है, ***ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में नहीं है।*** विकारीपर्याय है, व्यवहारनय है तो नय का विषय भी है। ऐसा है, उसका ज्ञान न हो, ***उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता।*** पर्याय में विकारी भाव न हो, ऐसा माननेवाले को द्रव्य का-वस्तु का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता। समझ में आया? पर्याय में विकारी भाव है। ऐसा जो न माने, उसे द्रव्य का सच्चा ज्ञान नहीं होता। क्योंकि द्रव्य और पर्याय मिलकर प्रमाण है। प्रमाणज्ञान के विषय में दोनों नय का विषय आ जाता है।

इसलिए ''व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है''... ज्ञान ग्रहण करनेयोग्य है। जानना, वह ग्रहण करनेयोग्य है। व्यवहारनय का विषय है, ऐसा जानना। जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह (समयसार की) बारहवीं गाथा में आया है, वह यहाँ कहा। ***ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है...*** उसका आश्रय... ***ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है,...*** ज्ञान करने को कहा। ***उसका आश्रय 'ग्रहण करनेयोग्य है' ऐसी विवक्षा से नहीं।*** क्या कहा? इस व्यवहारनय (का) पर्याय में आदर करने का, उपादेय करने का कहा नहीं। पर्याय में विकार है, उसके ज्ञान के स्वीकार करने के कारण उपादेय कहा है परन्तु उसका आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है,... उसे जाननेयोग्य है।

संसार है, विकार है, समकिती को भी पर्याय में राग है, ऐसे व्यवहारनय को जानने में ग्रहण करनेयोग्य है। *''उनका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है'' ऐसी विवक्षा से नहीं।* ऐसे कथन से यह नहीं कहा। *व्यवहारनय के विषयों का आश्रय (आलम्बन, झुकाव, सन्मुखता, भावना) तो छोड़नेयोग्य है ही...* वह तो छोड़नेयोग्य ही है, छोड़नेयोग्य है ही। *ऐसा समझने के लिए ५०वीं गाथा में...* आगे कहेंगे। *५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा।* प्रगटरूप से व्यवहारनय हेय है। जाननेयोग्य है। है, ऐसा जाननेयोग्य है, परन्तु है हेय। आहाहा! अभी बहुत गड़बड़ चली है।

५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा। जिस जीव के अभिप्राय में... श्रद्धा में *शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण और पर्यायों के आश्रय का त्याग हो,...* त्याग हो, *उसी जीव को द्रव्य तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है, ऐसा समझना, अन्य को नहीं।* पाठ में उपादेय आया न ? इसीलिए स्पष्टीकरण किया है। व्यवहारनय और निश्चयनय दोनों को उपादेय कहा, तो उसका अर्थ क्या ? कि पर्याय में व्यवहार विकार है, पर्याय है, ऐसे जानने को कहा। परन्तु उसका आश्रय करनेयोग्य है, पर्याय के सन्मुख होकर उसका आदर करनेयोग्य है, इसके लिये उपादेय नहीं कहा है। आहाहा! अब इसमें बड़ा विवाद है। निश्चय का कारण है, इसलिए व्यवहारनय भी आदरणीय है, ऐसा कहते हैं। ऐसा यहाँ नहीं है। यहाँ तो व्यवहारनय का विषय है, जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य है, ऐसा नहीं और व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! क्या कहा ?

पहले जो विभावपर्यायें... मूल टीका **'विद्यमान नहीं हैं' ऐसी प्रतिपादित की गई हैं, वे सब विभावपर्यायें वास्तव में...** आहाहा! विभावपर्याय क्या, क्षायिकभाव को भी हेय कहा। चार भाव की पर्याय को हेय कहा। आहाहा! वे **विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं।** व्यवहारनय से वर्तमान है, ऐसा ज्ञान कराने को कहा है।

और जो (व्यवहारनय के कथन से) चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं... यह व्यवहारनय से तो चार विभावभावरूप से परिणत। आहाहा! उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक-चारों को यहाँ विभावभाव कहा है। आहाहा! त्रिकाली स्वभाव पारिणामिकस्वभाव, वह एक त्रिकाली सनातन द्रव्य है और ये

चार पर्यायें हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक, चारों पर्यायें हेय हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि यह आत्मा का द्रव्य है, वह त्रिकाली द्रव्य है और उसकी वर्तमान पर्याय है, वह वर्तमान अवस्था है, तो अवस्था को जानना, ऐसा कहने में आया है परन्तु अवस्था का आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं कहा है। आहाहा! कहो, धन्नालालजी! चार विभावस्वभाव कहे। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक चार पर्याय है, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं, जाननेयोग्य है। है-ऐसा जाननेयोग्य है। आदरणीय तो त्रिकाली परम-स्वभावभाव, पंचम ज्ञायकभाव, वह समकित का विषय आदरणीय है। वह एक ही समकित का विषय है। चार पर्याय, वह समकित का विषय नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें।

बाहर का क्रियाकाण्ड तो कहीं रह गया। देह की क्रिया, वाणी की क्रिया, वह तो जड़ है। जड़ को तो आत्मा स्पर्श भी नहीं करता। जड़ को तो आत्मा कभी स्पर्श नहीं करता। चैतन्यतत्त्व जड़ को कभी स्पर्श नहीं करता। अरे! जड़ का एक परमाणु दूसरे परमाणु को कभी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! अब ऐसी बात! यह करो.. यह करो.. क्या करे? प्रभु! तू कौन है? क्या है? तेरी चीज़ ज्ञायकभाव है। ज्ञायक, जाननस्वभाव का पिण्ड है। वह तो जाननस्वभाव का पिण्ड है, वही आदरणीय है, वही ग्रहण करनेयोग्य है। इसके अतिरिक्त जो पर्याय होती है, वह जाननेयोग्य है, माननेयोग्य है। है-ऐसे माननेयोग्य है। आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसी बात अब कठिन पड़े। क्या हो?

चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं... आहाहा! **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** आहाहा! क्या कहते हैं? संसारी प्राणी में राग-द्वेष, दया, दान का उदयभाव भी है। चारित्र का, समकित का, उपशमभाव है; क्षयोपशम ज्ञान का भाव है और क्षायिक ज्ञान का, समकित का है। वह जाननेयोग्य है। आहाहा! उसे आदरनेयोग्य नहीं। यह कहा न? **चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं...** आहाहा! जब तक चार विभावभाव... विभाव का अर्थ यहाँ विकार नहीं, विशेष भाव। सामान्य जो त्रिकाली आत्मा, त्रिकाली स्वरूप भगवान आत्मा, वह सामान्य और उसकी पर्याय / अवस्था / हालत, वह विशेष। वह विशेष भाव संसार अवस्था में है। है-ऐसा माननेयोग्य है। वह भी... आहाहा!

वे चार पर्यायें होने पर भी, संसारदशा में वे होने पर भी **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** चार पर्यायें भले हो, परन्तु शुद्धनय के कथन से तो आत्मा सिद्धसमान ही है। आहाहा! इस आत्मा में जो चार पर्याय है, वह तो जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि भाव आते हैं परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं और उनसे लाभ होता है, ऐसा माननेयोग्य नहीं परन्तु वे हैं-ऐसा जाननेयोग्य है। आहाहा! लोगों को कहाँ जाना? कठिन पड़े।

यहाँ कहा न यह, कि **चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं...** जीव है, ऐसा नहीं। चार पर्यायवाला संसारी है परन्तु वे सब शुद्धनय के कथन से- अन्तर निश्चयदृष्टि के कथन से। त्रिकाली स्वभाव का ज्ञान कराने को वही एक आदरणीय है। त्रिकाल ज्ञायकभाव एक ही आदरणीय है, ऐसा कहना। **शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** चार भाववाले संसारी जीव भी निश्चयनय से सिद्धसमान ही हैं। आहाहा! भारी कठिन बात।

यहाँ तो सब चार भाववालों को संसारी कहा है। चार भाववालों को संसारी कहा है। वह है, परन्तु शुद्धनय से, निश्चयनय से, परमसत्य दृष्टि से, परम त्रिकाली पारिणामिक स्वभाव का स्वीकार करनेवाली दृष्टि से देखें तो सर्व सिद्धसमान हैं। वे चार पर्याय-फर्याय वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसी बात जगत को कठिन पड़े। क्या हो? मिली नहीं। आहाहा! चौरासी के अवतार कर-करके अनन्त काल हुआ। एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। अनन्त-अनन्त भव, जिसके भव की गिनती नहीं। ऐसे एक-एक योनि में अनन्त-अनन्त बार चौरासी लाख योनि में अवतार धारण किये। एक आत्मज्ञान बिना (धारण किये)। बाकी क्रियाकाण्ड तो बहुत किया। वह तो अनन्त बार किया, परन्तु वह तो राग की क्रिया है। आहाहा! राग से पुण्यबन्ध और पुण्यबन्ध से संसार मिलेगा। उससे जन्म-मरण का अन्त नहीं होता। आहाहा!

यहाँ कहा न, चार विभावस्वभाववाले संसारी हैं। नहीं, ऐसा नहीं। पर्यायदृष्टिवाले संसारी जीव चार भाववाले हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम क्षायिकभाववाले (हैं अवश्य)। परन्तु शुद्धनय की दृष्टि से देखें तो ये चार भाव नहीं हैं, अकेला शुद्धभाव है। आहाहा! जगत को कठिन पड़े। क्या हो? निवृत्ति नहीं मिलती। धन्धे के कारण, पाप के कारण पूरे दिन

(निवृत्ति नहीं मिलती)। उसमें धर्म के नाम से बाहर के क्रियाकाण्ड में मान लिया। जिन्दगी चली जाती है। अवसर मृत्यु के समीप आता है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, प्रभु! परमात्मा ऐसा कहते हैं, त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव, एक समय में संसारी प्राणी को पर्याय में भले चार भाव हो परन्तु शुद्धनय से देखे तो इन चार भाव की गिनती नहीं आती। वह तो सिद्धसमान त्रिकाली सनातन चैतन्यस्वरूप है। पंचम भावस्वरूप त्रिकाली है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय-फर्याय नहीं। पर्याय नहीं।

शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा... पर्याय अर्थात् सिद्ध की पर्याय। वह पर्याय नहीं। सिद्ध की पर्याय और गुण जैसे सब जीव हैं। वह पर्याय क्षायिकभाव को तो पहले निकाल दिया परन्तु सिद्ध की पर्याय जो है, वह भी है तो क्षायिकभाव। वह नहीं। परन्तु यहाँ तो चार भाववाले संसारी जीव हैं, ऐसा पहले लिया। संसारी प्राणी उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक चार पर्यायवाले संसारी प्राणी हैं। उन्हें शुद्धनय से देखें तो सिद्धसमान हैं। सिद्ध के गुण और पर्याय समान सिद्ध ही हैं। आहाहा! क्षायिकभाव की पर्याय को भी निकाल दिया। यहाँ सिद्धसमान में क्षायिकभाव वापस आ जाता है।

'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आहाहा! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो...' प्रभु अन्दर निर्मलानन्द विराजमान है, भगवान! उसकी पर्याय / अवस्था न देखो तो अन्दर भगवान परिपूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द से सर्वांग भरपूर है। आहाहा! पूर्ण ज्ञान और पूर्ण वीतराग शान्ति से अन्दर पूर्ण भरपूर है। आहाहा! उस नय से देखें तो संसारी के जो चार भाव हैं, वे उसमें नहीं हैं। सिद्ध समान है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा!

सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाली द्रव्य है। आहाहा! वर्तमान क्षायिक पर्याय भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! वर्तमान क्षायिक समकित हो, क्षायिक यथाख्यातचारित्र हो, वह भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है, सम्यग्दर्शन का ध्येय नहीं है। सम्यग्दर्शन— चौथे गुणस्थानवाले धर्म की पहली शुरुआतवाले, धर्म का पहला सोपान और पहली सीढ़ी.. आहाहा! वह सिद्ध समान आत्मा है, ऐसा सम्यग्दृष्टि मानता है। सम्यक् अर्थात् सत्यदृष्टि। त्रिकाल परमसत्य स्वभाव भगवान आत्मा। पंचम स्वभावभाव त्रिकाल ज्ञायकभाव

का स्वीकार दृष्टि में करे, वह सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन का विषय, ध्येय, लक्ष्य, त्रिकाली वस्तु आत्मा ज्ञायकभाव है। चार प्रकार की पर्याय भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! इसमें कहीं फुरसत कहाँ है? फुरसत कहाँ है? बाहर के क्रियाकाण्ड की प्रवृत्ति में पड़कर जिन्दगी चली जाती है। आहा..! अन्तर वस्तु महाप्रभु पड़ी है।

परमात्मा का पुकार है। अरिहन्तदेव सर्वज्ञदेव परमात्मा की यह वाणी है। प्रभु! तेरी पर्याय में संसारदशा में जो चार भाव दिखते हैं, वह बात हेय है। तेरी चीज़ सिद्ध समान त्रिकाल है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, कर्म, पैसा, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, वह तो कहीं पर रह गये, कहीं पर.. उनके कारण आते हैं और उनके कारण जाते हैं। आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चुम्बन नहीं करता। तीन लोक के नाथ केवलज्ञानी की यह पुकार है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। तीनों काल। समयसार की तीसरी गाथा में है। सर्व द्रव्य, अनन्त पदार्थ जितने हैं, वे अपने गुण-पर्यायरूप धर्म को-स्वभाव को स्पर्श करते हैं, परन्तु परद्रव्य को स्पर्श भी नहीं करते। यह आत्मा अन्दर है, वह शरीर को स्पर्श भी नहीं करता। कौन माने? पागल ही कहे, ऐसा है न? आहाहा! लोग पागल, लोग पागल। वे पागल सत्य को पागल कहे, ऐसा है। भगवान अरिहन्तदेव का पुकार है कि तीन काल में यह आत्मा शरीर को स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। ऐसा आत्मा चैतन्यस्वरूप में अन्दर आठ कर्म, वे अन्दर स्पर्श नहीं हुए हैं। दोनों चीज़ें अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा!

'**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।**' '**एकत्वनिश्चयगतः**' एक आत्मा पर्याय के आश्रय से नहीं। त्रिकाली द्रव्य वस्तु जो सत् सनातन, सर्वज्ञ जिनेश्वर ने जो द्रव्यस्वभाव वस्तुस्वभाव देखा, वह द्रव्य जो है '**एकत्वनिश्चयगतः**' वह एकपने को निश्चय को प्राप्त वह सुन्दर है। आहाहा! वह दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। तीन काल में कभी एक द्रव्य ने दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं किया, स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

मुमुक्षु : स्पर्श करे तो स्पर्श हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्श कर ही नहीं सकता। वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का अत्यन्त अभाव है, तो अत्यन्त अभाव है; इसलिए एक चीज़ दूसरी

चीज़ को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! समयसार, तीसरी गाथा। '**एकत्वनिश्चयगतः**' टीका में लिखा है कि एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी चुम्बन नहीं करता। आहाहा! एक आत्मा दूसरे आत्मा को, शरीर को, वाणी को, कर्म को कभी स्पर्शा ही नहीं है। अब यह बात बैठना कठिन लगती है।

यह यहाँ कहते हैं। संसारी प्राणी चार पर्यायवाले हैं, यह तो कहा। चार गति में जीव की अस्ति जो है, वह चार पर्यायवाले हैं परन्तु वस्तु दृष्टि उनकी देखें, उसमें कायम रहनेवाला परमात्मस्वरूप आत्मा, उस दृष्टि से वे सब हेय हैं। आहाहा! वे तो सिद्धसमान ही हैं। आहाहा! वह आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय है। समकित-चौथा गुणस्थान जिसे प्रथम प्रगट हो, उसका विषय यह एक ज्ञायकभाव है। उसकी चार पर्याय भी उसका विषय नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। क्या हो? निवृत्ति नहीं मिलती। प्रवृत्ति में सब धर्म मना गये हैं। यह प्रवृत्ति दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो, उसमें धर्म मना लिया गया, वह तो राग है। आहाहा! और वह तो उदयभाव है।

यहाँ तो उदय, उपशम, क्षयोपशम, और क्षायिकभाव भी संसारी जीव को है, ऐसा कहा। आहाहा! आत्मा को वह भाव नहीं। आत्मा तो त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु है। अनाकुल आनन्द का नाथ, ऐसा भगवान सर्वज्ञ ने जैसा देखा, अनुभव किया और परमात्मा ने प्रगट किया, ऐसा ही सबका आत्मा अन्दर है। चार भाव को और उसे सम्बन्ध नहीं है, ऐसा कहते हैं, तो फिर शरीर को, वाणी को, मन को, बाहर की इस धूल को - पैसा-वैसा को धूल (को) मेरा (अपना) माने, वह सब मिथ्यात्व और अज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : चक्रवर्ती समकिती एक रजकण भी मेरा है, ऐसा नहीं मानते। भरत चक्रवर्ती, एक राग का कण मेरा है, ऐसा नहीं मानते। ऋषभदेव भगवान के पुत्र, प्रथम तीर्थंकर के पुत्र चक्रवर्ती। छियानवे हजार स्त्रियाँ, छियानवे करोड़ सैनिक.. आहाहा! मैं तो आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ। ज्ञानस्वरूप ऐसी मेरी चीज़ है, ऐसा मानते थे। आहाहा! जैसे अग्नि और बर्फ। दृष्टान्त आया था न? बहिन ने (बहिनश्री के वचनामृत में) आया था। अग्नि और बर्फ के बीच खड़ा हुआ प्राणी। वह अग्नि की ओर नहीं जाता, बर्फ की ओर जायेगा। बीच में खड़ा, वह इस ओर ढलेगा, ऐसे नहीं जायेगा।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, पुण्य और पाप के भाव वह अग्नि है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, वह अग्नि और शुभ-अशुभभावरहित अन्दर प्रभु शीतल-ठण्डा बर्फ जैसा अविकारी शान्तरस है, तो धर्मी जीव शान्तरस की ओर जायेगा परन्तु यह विकारभाव अग्नि समान है, उस ओर नहीं जायेगा। आहाहा! ऐसी बात है। कभी सुनी नहीं होगी और एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, ऐसी बात करके माने कि धर्म हो गया। अरे! प्रभु! अनन्त काल बीत गया, नाथ! ऐसे-ऐसे तो अनन्त भव किये परन्तु एक भी भव घटा नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **(औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं,...)** ऐसा कहा न? है। **(वे सब...)** उदयभाववाले भी, हों! अन्दर **(वे सब शुद्धनय के कथन से...)** पवित्र दृष्टि और कथन से, वास्तविक वस्तु की दृष्टि के कथन से **(शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं)।** सिद्ध की पर्याय ली। यह नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! इसमें कहीं दुकान-बुकान में चला होगा, पैसा और धूल इकट्ठी की और करोड़ रुपये, दो करोड़ रुपये, दस करोड़ रुपये और धूल करोड़... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि इस शरीर का एक रजकण है... यह तो अनन्त रजकण का बना हुआ जड, मिट्टी, धूल, उसका एक रजकण भी आत्मा का नहीं है और अंगुली हिलती है, वह भी आत्मा से नहीं। अरे! यह कौन माने? अंगुली चलती है, जीभ चलती है, जड़ है, जड़ से चलता है; आत्मा से नहीं। आत्मा तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, अपनी चीज़ में विराजमान है। वह परचीज़ की क्रिया का अभिमानी संसार में चौरासी लाख योनि में भटकता है। यहाँ कहा न कि **(औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं,...)** वह भी व्यवहारनय से। ऐसा कहा न? आहाहा!

ऊपर नहीं कहा? कि **चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** आहाहा! सब भगवान अन्दर, यदि सिद्धभगवान स्वरूप न हों तो सिद्धभगवान होगा कहाँ से? प्राप्त की प्राप्ति है तो प्राप्ति होती है। कुएँ में हो वह हौज में आता है। अवेड़ा (हौज का गुजराती शब्द) को क्या कहते हैं? हौज में आता है। इसी प्रकार अन्दर में अनन्त ज्ञान, आनन्द और शान्ति है। अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, जिसमें राग की गन्ध नहीं, ऐसी चीज़ की दृष्टि करने से शुद्धनय से सिद्ध समान देखने में आता है। आहाहा! है?

टीका में पाठ है। **व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं।** आहाहा! **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! यह एक बात बैठे तो इसे सम्यग्दर्शन हो। बाकी क्रियाकाण्ड और अपवास करके मर जाये, आहाहा! रात्रि भोजन त्याग, अपवास और शरीर का ब्रह्मचर्य पाले, ऐसी क्रियाएँ अनन्त बार की हैं और अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया है परन्तु अन्तर का आत्मा भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ, उस पर इसने कभी दृष्टि नहीं की, उसका स्वीकार, सत्कार, आदर नहीं किया। इस रागभाव का आदर किया। आहाहा! ऐसा कहा न? कोष्ठक में भी यह है।

(जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं)। सिद्ध समान हैं। आहाहा! पैसा और धूल वह तो कहीं रह गयी। शरीर, मिट्टी, यह तो मिट्टी का, धूल का बना हुआ है। यह श्मशान में राख होकर उड़ जायेगा।

'रजकण तेरे भटकेंगे, जैसे भटकती रेत,
फिर नरभव पाये कहाँ? चेत चेत नर चेत।'

यह वस्तुस्वरूप नहीं समझा, अन्दर में सम्यग्ज्ञान नहीं किया, डोरा सुई में नहीं पिरोया तो वह सुई खो जायेगी। सुई में सूत का डोरा पिरोया नहीं होगा तो वह खो जायेगी। ऐसे आत्मारूपी सुई, वह चार भाव से भिन्न अकेला ज्ञायक, ऐसा जिसने ज्ञान नहीं किया, ऐसा श्रुतज्ञान—भावज्ञान नहीं किया, वह चार गति में भटकेगा। आहाहा! ऐसी बात है। पूरे दिन करना क्या? यह सब स्टील के सब कारखाने। बड़े कारखाने। तीन-तीन करोड़ के कारखाने। लालचन्दभाई है न? थे न? उज्जैन.. उज्जैन। उज्जैन में लालचन्दभाई थे। उन्हें तीन करोड़ का कारखाना था। वहाँ हम गये थे। चरण कराये थे। व्याख्यान सुनते हैं परन्तु फिर भ्रमणा ऐसी कि ब्राह्मणों से माला जपावे, जिससे हमारा कुछ यह बढ़े, पैसे की आमदनी बढ़े। आहाहा! हम उतरे, उस घर में ब्राह्मण (जप) करते थे। सेठ करोड़पति। तीन करोड़ का एक मील। ऐ... क्या करते हो यह तुम? कुछ खबर नहीं होती। धूल में नहीं मिलता।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही। यहाँ तो चार भाव, वे पर्याय में हैं। उदयभाव—यह राग-द्वेष, दया, दान, यह उदयभाव; अन्दर में आंशिक शान्ति प्रगट हो, वह उपशमभाव;

जो प्रगट होने के बाद जाये नहीं, वह क्षायिकभाव और किंचित् उघाड़ तथा किंचित् उघाड़ नहीं, वह क्षयोपशमभाव। इन चारों भावरूप परिणमित संसारी प्राणी हैं। आया न? आहाहा! इन **चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं...** आहाहा! व्यवहारनय का विषय है, आदरणीय नहीं। आहाहा! **वे सब शुद्धनय के कथन से...** आहाहा! **शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं। (अर्थात् जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि...)** उदय अर्थात् रागादि। दया, दान, भक्ति, भगवान का नाम स्मरण यह सब उदयभाव, राग। रागादि के परिणाम को करनेवाला **(विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं,...)** आहाहा!

(वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं)। आहाहा! कैसे जँचे? पूरे दिन पाप का धन्धा-पानी, स्त्री-पुत्र को सम्हालना, रखना, प्रसन्न करना और छह-सात घण्टे सोना। आहाहा! अरे रे! समय चला जा रहा है। मनुष्यपने का अवतार... मृत्यु का पल है वह बदले, ऐसा नहीं है। भगवान के ज्ञान में आया है कि इस पल में देह छूटनेवाली है तो वह छूटेगी ही छूटेगी। आहाहा! जिस समय में, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस प्रकार से निश्चित हो गया है, वहाँ एकदम देह छूट जानेवाली है। आत्मा अपनी सत्ता है तो लेकर चला जायेगा। आहाहा! कहाँ जायेगा? कि जैसे भाव स्वयं ने किये हैं, उसमें रहकर जायेगा। आहाहा! रागादि को अपना भाव माना हो, वह मिथ्यादृष्टि लेकर चार गति में भटकने जायेगा। आहाहा! दया, दान का भाव राग और वह भी मेरा, मुझे लाभदायक, ऐसी जो मिथ्यादृष्टि लेकर चार गति में भटकने जायेगा। आहाहा!

यहाँ तो उन्हें तो निकाल दिया परन्तु उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव को भी संसारी परिणमित है, ऐसा कहा। आहाहा! और तेरा आत्मा तो सिद्ध समान है। आहाहा! उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय तो निर्मल है। कहते हैं, वह भले हो, वह संसारी प्राणी परिणत है। सिद्ध में वह नहीं। आहाहा! सिद्ध भगवान पूर्णानन्द में सर्वांग में ज्ञान और आनन्द पड़े हैं। उनकी दृष्टि से आत्मा को देखो तो, ये चार भाव अन्तर में नहीं हैं। आहाहा!

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा) कहा है कि— ऊपर श्लोक है

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहित-पदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परम-मर्थं चिच्चमत्कार-मात्रं,
परविरहित-मन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्।।

आहाहा! **यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है...** कि रागादि भाव हैं। **ऐसे जीवों को, अरे रे!** आचार्य कहते हैं कि अरे रे! खेद है। यह पुण्य और पाप के भाव में पड़ा है, वह प्राणी दुःखी है। चार गति में भटकनेवाला वह प्राणी है। आहाहा! करोड़पति, अरबपति हो, वह मरकर सूकर हो। आहाहा! ऐसे अनन्त अवतार किये। अनन्त बार अरबपति हुआ, अनन्त बार अरबपति मरकर सूकर हुआ। यहाँ कमजोर प्राणी हो, वह छूए नहीं और वहाँ सूकर (होकर) विष्टा खाये। आहाहा! अनन्त-अनन्त काल। गत काल में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. भव का कहीं अन्त नहीं, इतने अनन्त भव किये। आहाहा!

यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है—ऐसे जीवों को, अरे रे! हस्तावलम्बनरूप भले हो,... निमित्तरूप भले हो, **तथापि...** आहाहा! **जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र,...** चैतन्यचमत्कार ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा, चैतन्य के प्रकाश का पिण्ड प्रभु! चैतन्य के नूर से भरपूर पूर, उस चैतन्य के नूर का पूर प्रभु अन्दर है। आहाहा! अरे रे! कभी सामने भी देखा नहीं। चैतन्य के पूर से भरा हुआ अन्दर तत्त्व, पानी का पूर जैसे बहता है, वैसे यह चैतन्य पूर ऐसे ध्रुव। ऐसे ध्रुव। अनादि-अनन्त ऐसा का ऐसा ध्रुव.. ध्रुव रहता है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा... **अरे रे!** आचार्य कहते हैं कि **अरे रे!** भगवान तू कहाँ है और क्या करता है? प्रभु! विकारी दया, दान के भाव को तेरे मानकर भटककर मर गया है - चौरासी के अवतार में भटककर मर गया है। आहाहा!

अरे रे! हस्तावलम्बनरूप भले हो, तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र,... चैतन्यचमत्कार! आहाहा! अपने क्षेत्र में रहकर स्व को-पर को पूर्ण जाननेवाला भगवान, देह में विराजमान भगवान आत्मा। आहाहा! अपने क्षेत्र में रहकर, अपने भाव में रहकर, अपने और पर को जाननेवाला भगवान आत्मा है। आहाहा! उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। दया, दान, भक्ति, व्रतादि के परिणाम तो पुण्यबन्ध का कारण, संसार में भटकने का कारण है। आहाहा!

जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित... आहाहा! रागादि से रहित चैतन्यमात्र भगवान अन्दर आत्मा है। आहाहा! **ऐसे परम पदार्थ को...** चैतन्यचमत्कारमात्र, मात्र कहने से अन्दर दूसरा कुछ नहीं। दया, दान के विकल्प भी राग और विकार और दुःख / आकुलता, उससे रहित चैतन्यमात्र अकेला चैतन्य.. चैतन्यप्रकाश। जैसे चन्द्र शीतल का पिण्ड है, वैसे यह शीतल अविकारी चैतन्य पिण्ड प्रभु अन्दर है। आहाहा! वह चैतन्यमात्र पर से रहित... आहाहा! शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी, धूल, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब तो कहीं रह गये, परन्तु अन्दर में दया, दान के परिणाम भी पर, उनसे भी प्रभु अन्दर भिन्न है। आहाहा!

ऐसे परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं,... आहाहा! चैतन्य चमत्कारी वस्तु अन्दर, अपने क्षेत्र में रहकर सबको जाने और देखे, किसी पर को करे और भोगे नहीं.. आहाहा! ऐसी जो चीज़ अपने में है, वह भगवान आत्मा **परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं,...** जो जीव, समकित में इस प्रकार देखते हैं। आहाहा! चौथे गुणस्थान में श्रावक होने से पहले। श्रावक को पंचम गुणस्थान, वह तो कोई अलौकिक बातें हैं। यह तो अभी सम्यग्दर्शन होने के समय **परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं,...** आहाहा! परम पदार्थ जो अनादि-अनन्त सनातन सत्य ज्ञायकमूर्ति प्रभु को सम्यग्दृष्टि, परसन्मुख का लक्ष्य छोड़कर अन्तर में देखते हैं। आहाहा! **उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है।** उन्हें व्यवहार कुछ नहीं है। आहाहा! है, पर्याय में राग है, पर्याय में पर्याय का भाव है, परन्तु अन्तर में जहाँ देखे तो उसमें कुछ नहीं। आहाहा! समझ में आया? **यह व्यवहारनय कुछ नहीं है।** आहाहा! उसमें कुछ आत्मा का शरण नहीं, ऐसा कहते हैं। राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा सब विकारभाव, दुःखरूप अशरण है। शरणरूप वह तो भगवान अन्दर भिन्न विराजता है। कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, यह बात सुनना कठिन। यह जैन परमेश्वर त्रिलोक के नाथ कहते हैं। एक अंगुली, इसे स्पर्श नहीं करती, छूती नहीं क्योंकि एक दूसरे में अभाव है। आहाहा! एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी स्पर्श नहीं करता। अन्तर में अभाव है। आहाहा! ऐसी चीज़ को देखनेवाले को **व्यवहारनय कुछ नहीं है।** उसे फिर पर्याय में राग है, वह गिनती नहीं करता है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! एक तो यह बात ही

(कहीं नहीं है)। सर्वत्र गड़बड़ हो गयी है और यह बात कहे तो कहते हैं एकान्त है.. एकान्त है। यह निश्चय एकान्त है। ठीक, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा का पुकार है। जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ सीमन्धरस्वामी भगवान तो महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। वहाँ से यह वाणी आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि वहाँ गये थे। संवत् ४९ के वर्ष (में गये थे) दो हजार वर्ष पहले। आठ दिन रहे थे। आकर यह बनाया है। त्रिलोक के नाथ का कथन तो यह है। सीमन्धर भगवान प्रभु विराजते हैं। बीस तीर्थंकर, लाखों केवली महाविदेह में विराजते हैं। ओहो..!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा को अन्दर शुद्ध पूर्णानन्द, रागरहित और पर्यायरहित जो देखे, उसे **व्यवहारनय कुछ नहीं है।** उसे व्यवहार कुछ नहीं है। आहाहा! अर्थात् उसके व्यवहार की कोई गिनती नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। सुनना कठिन पड़े। पूरे दिन परद्रव्य के साथ सम्बन्ध। आहाहा! यहाँ कहे कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। त्रिलोकनाथ का पुकार है। अनन्त द्रव्य अनन्तरूप से कैसे रहें? अनन्त-अनन्तरूप से कैसे रहें? भगवान ने अनन्त द्रव्य देखे हैं। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु आदि छह द्रव्य देखे हैं। जाति से छह द्रव्य, संख्या से अनन्त। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चुम्बन नहीं करता। आहाहा! (चुम्बन करे) तब तो भावरूप हो जाये। एक का भाव दूसरे रूप हो जाये तो भावरूप हुआ। एक दूसरे में तो अभाव है। यह बात बैठना... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जो कुछ अन्तर में इस भगवान को देखे, उसे व्यवहारनय कुछ नहीं है। आहाहा! पर से रहित चैतन्यचमत्कारमात्र। चैतन्यचमत्कारमात्र। जानन.. जानन.. जाननस्वभाव। जाननस्वभाव का पूर भरा है। ऐसे चमत्कार को देखनेवाले **परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं, उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है।** व्यवहारनय की कोई गिनती नहीं है। है, ऐसा जानता है कि है। आदर-वादर नहीं। ऐसा वीतराग का मार्ग है।

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)